माँ

दौलत राम सहगल
आशुलिपिक

दूर हूँ मैं,
बहुत दूर अपनों से,
यहाँ है सिर्फ उनकी यादें
यादें कुछ खट्टी,कुछ मीठी ।
सब याद आते हैं,
माँ, पिताजी, भाई, बहन
तस्वीर तैर जाती है जब
आँखों के सामने माँ की
फिर शुरू होता है सिलसिला यादों का
माँ, जो सुबह-सुबह उठाती थी सर्दी में,
बुरा लगता था मुझे
क्योंकि मैं, और सोना चाहता था
और माँ के हाथ की वे रोटियाँ
गेहूँ की मक्के की ओर धान की
सच, कितना स्वाद था उनमें ।
बस खाता जाता
चूल्हे के सामने बैठकर
बचपन में माँ से सुनी कहानियाँ
खासकर " सात भाईयों की "
राजा-महाराजाओं की
और भी न जाने कितनी ही
जो अब यादों से भी जा चुके हैं
साथ ही याद आती हैं
माँ की वो डाट-फटकार
साथ ही वो प्यार दुलार ।
ज़रा सी तबियत खराब होते ही
हाथ में दवाई लिए सामने खड़ी रहती
अब याद आती है उनकी अपार ममता ।
पर अब यहाँ-कहाँ है वो सब ?

न वो सुबह है, जब माँ जगाती थी ।
न उनके हाथ की वे रोटियां
जिन्हें खाकर डकार भी न लेता था ।
न ही माँ की वो डांट-फटकार
वो सब यहाँ-कहां ?
यहां ढूंढने पर भी नहीं है
यहां मिलता है सिर्फ़ शब्दों का जाल
कृत्रिमता, अहं, औपचारिकता
बनावटी, दिखावटी प्यार ।
पर वो प्यार दुलार नहीं
ममता नहीं, वो डांट नहीं, फटकार नहीं
यहां तो सिर्फ़ यादें हैं, माँ की
उनकी छवि देखने को तड़पती हैं, आँखें ।
न जाने कैसी होगी ?
मेरी प्यारी माँ !